हमारे सांस्कृतिक गौरवका प्रतीक : अहार

क्षेत्रकी पावनता और अतीत गौरव

आजसे एक हजार वर्ष पूर्व यह वन-खण्ड (क्षेत्र) कितना समृद्ध था, कितनी जातियाँ यहाँ रहती थीं, कितने धनकुबेरोंकी यहाँ गगनचुम्बी अट्टालिकाएँ थीं और कितने धर्मपिपासु साधक और श्रावकजन यहाँ द्रव्यका व्यय कराकर और करके अपनेको धन्य मानते थे। आप क्या कह सकते हैं कि यह सब समृद्धि—विभिन्न अनेक जातियोंका निवास, अनगिनत जिनमन्दिरोंका निर्माण और उनकी तथा असंख्य मूर्तियोंकी प्रतिष्ठाएँ जादूकी छड़ीकी तरह एक दिनमें होगई होंगी ? मेरा विश्वास है कि इस अद्भुत समृद्धिके लिए, दस-बीस वर्ष ही नहीं, शताब्दियां लगी होंगी। यहाँकी चप्पे-चप्पे भूमिके गर्भमें सहस्रों मूर्तियों, मन्दिरों और अट्टालिकाओंके भग्नावशेष भरे पड़े हैं। क्षेत्रकी भूमि तथा उसके आस-पासके स्थानोंकी खुदाईसे जो अभी तक खण्डित-अखण्ड मूर्तियाँ और महत्त्वपूर्ण भग्नावशेष उपलब्ध हुए हैं, वे तथा उनपर अङ्कित प्रचुर लेख यहाँके वैभव और गौरवपूर्ण इतिहासकी परम्पराको प्रकट करते हैं। सत्तरह-अठारह वर्ष पहले पं० गोविन्ददासजी न्यायतीर्थने, जो यहींके निवासी हैं, बड़े श्रमसे यहाँके ११७ मूर्तिलेखों व अन्य लेखोंका संग्रह करके उन्हें अनेकान्त (वर्ष ९, १०, सन् १९४८-४९) में प्रकाशित किया था। बा० यशपालजी जैन दिल्लीके प्रयाससे एक संग्रहालयकी भी यहाँ स्थापना हो गई है, जिसमें कितनी ही मूर्तियोंके अवशेष संगृहीत हैं। ब्र० रिषभचन्द्रजी जैन प्रतापगढ़ने भी इस क्षेत्रकी कुछ ज्ञातव्य सामग्रीपर प्रकाश डाला है। स्व० क्षेत्र-मंत्री पं० बारेलालजीका तो आरम्भसे ही इस दिशामें स्तुत्य प्रयास रहा है। आपने पं० धर्मदासजी द्वारा रचित हिन्दीके **'चौबीसकामदेव-पुराण'** के, जिसे लेखकने श्रीनामक आचार्यके **'प्राकृत चौबीस कामदेव पुराण'** का अनुवाद बताया है, आधारसे उसमें वर्णित यहाँके स्थानोंकी पुष्टि उपलब्ध वर्तमान स्थलोंसे करते हुए कुछ निष्कर्ष ऐसे निकाले हैं जो विचारणीय हैं। उदाहरणके लिए उनके कुछ निष्कर्ष इस प्रकार हैं :—

१. कोटौ नामक भाटौ वर्तमान क्षेत्रसे अत्यन्त निकट है, जो एक फर्लांग ही है। इस भाटेमें गगनचुम्बी पर्वत हैं, जिनपर मन्दिरोंके भग्नावशेष अब भी पाये जाते हैं।

२. मदनसागर तालाब, काममदनसागर और मदनेशसागर ये तीनों तालाब पर्वतोंके नीचे तलहटीमें हैं।

३. हथनूपुर (हन्तिपुर) नामक स्थान पहाड़के नीचे हाथीपडावके नामसे प्रसिद्ध है।

४. सिद्धान्तश्री सागरसेन, आर्यिका जयश्री और चेल्लिका रत्नश्रीके नाम यहाँके मूर्तिलेखोंमें अङ्कित हैं।

५. गगनपुर नामक स्थान आज गोलपुरके नामसे प्रसिद्ध है, जो क्षेत्रके समीप ही है।

६. टांडेकी टोरिया, टांडेका खंदा और पड़ाव ये तीनों स्थान क्षेत्रके अत्यन्त निकट हैं।

७. सिद्धोंकी गुफा, सिद्धोंकी टोरिया नामक स्थान भी पासमें ही हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. एक पहाड़ खनवारा पहाड़ कहा जाता है, जिसपर पत्थरके बड़े खनवारे हैं। सम्भवतः यहाँसे मूर्तियोंके लिए पत्थर निकाला जाता होगा।

९. मदनेशसागरसरोवरके तटकी पहाड़ीपर एक विशाल कामेश्वर(मदनेश्वर) का मन्दिर था, जिसके विशाल पत्थरोंके अवशेष आज भी वहाँ देखे जा सकते हैं और वह स्थान अब भी मदनेश्वरके मन्दिरके नामसे प्रसिद्ध है।

इन निष्कर्षोंमें कितना तथ्य है, इसकी सूक्ष्म छानबीन होना चाहिए। इसके लिए आवश्यक है कि उल्लिखित हिन्दी और प्राकृत दोनों **'चौबीस कामदेव-पुराण'** प्रकाशमें आयें और उनका गवेषणाके साथ अध्ययन किया जाय। **"सिद्धोंकी गुफा"** और **'सिद्धोंकी टोरिया'** नामक स्थान अवश्य महत्त्व रखते हैं और जो बतलाते हैं कि इस भूमिपर साधकोंने तपश्चर्या करके 'सिद्ध' पद प्राप्त किया होगा और इसीसे वे स्थान **'सिद्धोंकी गुफा'**, **'सिद्धोंकी टोरिया'** जैसे नामोंसे लोकमें विश्रुत हुए हैं। इस निष्कर्षमें काफी बल है। यदि इसकी पुष्ट साक्षियाँ मिल जायें तो निश्चय ही यह प्रमाणित हो सकेगा कि यह पावन क्षेत्र जहाँ काफी प्राचीन है वहाँ अतीतमें सिद्धक्षेत्र भी रहा है और साधक यहाँ आकर **'सिद्धि'** (मुक्ति) के लिए तपस्या करते थे। भले ही उस समय इसका नाम अहार न होकर दूसरा रहा हो। विक्रमकी ११वीं-१२वीं शतीके मूर्तिलेखोंमें इसका एक नाम 'मदनेशसागरपुर' मिलता है। जो हो, यह सब अनुसन्धेय है।

मूर्तिलेखोंका अध्ययन

यहाँके उपलब्ध मूर्तिलेखोंका अध्ययन करनेपर कई बातोंपर महत्त्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। उन्हींका यहाँ कुछ विचार किया जाता है।

१. पहली बात तो यह है कि ये मूर्तिलेख वि० सं० ११२३ से लेकर वि० सं० १८८१ तकके हैं। इनके आधारपर कहा जा सकता है कि यहाँ मन्दिरों और मूर्तियों की प्रतिष्ठाएँ वि० सं० ११२३ से आरम्भ होकर वि० सं० १८८१ तक ७५८ वर्षों तक लगातार होती रही हैं।

२. दूसरी बात यह कि ये प्रतिष्ठाएँ एक जाति द्वारा नहीं, अपितु अनेक जातियों द्वारा कराई गई हैं। उनके नाम इस प्रकार उपलब्ध होते हैं :—

खंडिल्लवालान्वय (खंडेलवाल—ले० ७०), गर्गराटान्वय (ले० ७१), देउवालान्वय (ले० ६९), गृहपत्यन्वय (गहोई-ले० ८७), गोलापूर्वान्वय (ले० ६०), जैसवालान्वय (ले०५९), पौरपाटान्वय (ले०४२), मेडवालान्वय (लेख ४१), वैश्यान्वय (ले० ३९), मेडतवालवंश (ले० ३३), कुटकान्वय (ले० ३५), लभेचुकान्वय (ले० २८), अवधपुरान्वय (ले० २३), गोलाराडान्वय (ले० १२), श्रीमाधुन्वय (ले० ७), मइडितवालान्वय (ले० २७, यह लेख ३३ में उल्लिखित मेडतवालवंश ही जान पड़ता है), पुरवाडान्वय (ले० १००), पौरवालान्वय (ले० १०२), माथुरान्वय (ले० ५६)। ध्यान रहे कि ब्रेकटमें जो लेख-नम्बर दिये गये हैं वे मात्र उदाहरणके लिए हैं। यों तो एक-एक जातिका उल्लेख कई-कई लेखोंमें हुआ है।

इस प्रकार इन लेखोंमें १९ जातियोंका स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इनमें कईके उल्लेख तो ऐसे हैं, जिनका आज अस्तित्व ज्ञात नहीं होता। जैसे गर्गराटान्वय, देउवालान्वय आदि। इनकी खोज होनी चाहिए। यह भी सम्भव है कि कुछ नाम भट्टारकों या ग्रामोंके नामपर ख्यात हों।

३. तीसरी बात यह कि इनमें अनेक भट्टारकोंके भी नामोल्लेख हैं और जिनसे जान पड़ता है कि इस प्रदेशमें उनकी जगह-जगह गद्दियाँ थीं—प्रतिष्ठाओंका संचालन तथा जातियोंका मार्गदर्शन वे ही करते थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सबसे पुराने वि० सं० १२१३ के लेख (७३) में भट्टारक श्रीमाणिक्यदेव और गुण्यदेवका, मध्यकालीन वि० सं० १५४८ के लेख (९७) में भ० श्रीजिनचन्द्रदेवका और अन्तिम वि० सं० १६४२, वि० सं० १६८८ के लेखों (११४, ९५) में क्रमशः भ० धर्मकीर्तिदेव, भ० शीलसूत्रदेव, ज्ञानसूत्रदेव तथा भ० जगन्द्रषेणके नामोल्लेख हैं। अन्य और भी कितने ही भट्टारकोंके इनमें नाम दिसे हुए हैं।

४. चौथी बात यह कि कुन्दकुन्दान्वय, मूलसंघ, बलात्कारगण, सरस्वतीगच्छ, काष्ठासंघ आदि संघ-गण-गच्छादिका उल्लेख है, जिनसे भट्टारकोंकी यहाँ कई परम्पराओंका होना ज्ञात होता है।

५. पाँचवीं बात यह कि इन लेखोंमें कई नगरों और ग्रामोंका भी उल्लेख है। जैसे वाणपुर (ले० १, ८७, ८९), महिषणपुर (ले० १००), मदनेशसागरपुर (ले० १), आनन्दपुर (ले० १), वसुहाटिका (ले० १), ग्राम अहारमेंथे (अहार—ले० ९१) आदि। इससे मालूम पड़ता है कि ये सभी स्थान इस क्षेत्रसे प्रभावित थे और वहाँके भाई यहाँ आकर प्रतिष्ठाएँ कराते थे।

६. छठी बात यह कि वि० सं० १२०७ और वि० सं० १२१३ के लेखों (नं० ८७, ८९) में गृहपत्यन्वय (गहोई जाति) के एक ऐसे गोत्रका उल्लेख है जो आजकल परवार जातिमें है और वह है कोच्छल्ल गोत्र। इस गोत्र वाले वाणपुर (वानपुर) में रहते थे। क्या यह गोत्र दोनों जातियोंमें है ?, यह विचारणीय है। यह भी विद्वानोंके लिए विचारयोग्य है कि इन समस्त उपलब्ध लेखोंमें इस प्रान्तकी शताब्दियोंसे सम्पन्न, शिक्षित, धार्मिक और प्रभावशाली परवार जातिका उल्लेख अवश्य होना चाहिए था, जिसका इनमें अभाव मनको कौंच रहा है। मेरा विचार है कि इन लेखोंमें उसका उल्लेख है और उसके द्वारा कई मन्दिरों एवं मूर्तियोंकी प्रतिष्ठाएँ हुई हैं। वह है 'पौरपाटान्वय', जो इसी जातिका मूल नाम जान पड़ता है और उक्त नाम उसीका अपभ्रंश प्रतीत होता है। जैसे गृहपत्यन्वयका नाम गहोई हो गया है। यह 'पौरपाटान्वय' पद्मावती पुरवाल जातिका भी सूचक नहीं है, क्योंकि उसका सूचक 'पुरवाडान्वय' है जो अलगसे इन लेखोंमें विद्यमान है। इस सम्बन्धमें विशेषज्ञोंको अवश्य प्रकाश डालना चाहिए।

७. सातवीं बात यह है कि इन लेखोंमें प्रतिष्ठा कराने वाली अनेक धार्मिक महिआओंके भी नाम उल्लिखित हैं। आर्यिका जयश्री, रतनश्री आदि व्रती महिलाओंके अतिरिक्त सिवदे, सावनी, मालती, पदमा, मदना, प्रभा आदि कितनी ही श्राविकाओंके भी नाम उपलब्ध हैं।

और भी कितनी ही बातें हैं जो इन लेखोंका सूक्ष्म अध्ययन किये जानेपर प्रकाशमें आ सकती हैं।

हमारा वर्तमान और भावी

आप अपने पूर्वजोंके गौरवपूर्ण और यशस्वी कार्योंसे अपने शानदार अतीतको जान चुके हैं और उनपर गर्व भी कर सकते हैं। परन्तु हमें यह भी देखना है कि हम उनकी इस बहूमूल्य सम्पत्तिकी कितनी सुरक्षा और अभिवृद्धि कर सके और कर रहे हैं ? सुयोग्य पुत्र वही कहलाता है जो अपनी पैतृक सम्पत्तिकी न केवल रक्षा करता है अपितु उसे बढ़ाता भी है। आज हमारे सामने प्रश्न है कि हम अपनी सांस्कृतिक सम्पत्तिकी सुरक्षा किस प्रकार करें और उसे कैसे बढ़ायें, ताकि वह सर्वका कल्याण करे ? कोई भी समाज या देश अपने शानदार अतीतपर चिरकाल तक निर्भर एवं जीवित नहीं रह सकता। यदि केवल अतीतकी गुण-गाथा ही गायी जाती रहे और अपने वर्तमानको न सम्हाला जाय तथा भावीके लिए पुरुषार्थ न किया जाय तो समय आनेपर हमारे ही उत्तराधिकारी हमें अयोग्य और नालायक बतायेंगे। सांस्कृतिक भण्डार भी रिक्त हो जायेगा। अतः उल्लिखित प्रश्नपर हमें गम्भीरतासे विचार करना चाहिए। हमारे प्रदेशमें सांस्कृतिक सम्पत्ति प्रायः सर्वत्र बिखरी पड़ी है। पपौरा, देवगढ़, खजुराहा आदि दर्जनों स्थान उसके उदाहरण हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रातःस्मरणीय पूज्य श्रीगणेशप्रसादजी वर्णीने इस प्रान्तमें कई वर्षों तक पैदल यात्रा करके भ्रमण किया और समाजमें फैली रूढियों तथा अज्ञानताको दूर करनेका अदम्य प्रयास किया था। उन्होंने अनुभव किया था कि ये दोनों ऐसे घुन हैं जो अनाजको भूसा बना देते हैं—समाज उनसे खोखला हो जाता है। 'मेरी जीवन-गाथामें' उन्होंने ऐसी बोसियों रूढ़ियों और अज्ञानताका उल्लेख किया है, जिनसे समाजमें पार्थक्य और अनैक्यका साम्राज्य जड़ जमा लेता है और उसे शून्य बना देता है। जैन धर्म तीर्थंकरोंका धर्म है और तीर्थंकर समस्त जगत्का कल्याण करने वाले होते हैं। इसीसे जैनधर्मके सिद्धान्तोंमें विश्व-कल्याणकी क्षमता है। जैन धर्म किसीका भी अहित नहीं चाहता। और इसी लिए प्रतिदिन जिन-पूजाके अन्तमें यह भावना की जाती है—

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु बलवान् धार्मिको भूमिपालः
काले काले सम्यग् वर्षतु मघवा व्याधयो यान्तु नाशम्।
दुर्भिक्षं चौरमारी क्षणमपि जगतां मास्म भूज्जीवलोके
जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं सर्वसौख्यप्रदायि॥

अर्थात् समस्त देशोंकी प्रजाओंका भला हो, उनका पालक राजा बलवान् और धार्मिक हो, यथासमय उचित वर्षा हो, कोई किसी प्रकारकी व्याधि (शारीरिक कष्ट) न हो, देशमें कहीं अकाल न पड़े, कहीं भी चोरियाँ-डकैतियाँ न हों और न एक क्षणके लिए भी कहीं हैजा, प्लेग जैसी दैवी विपत्तियाँ आयें। सभीको सुख देनेवाला वीतराग सन्तोंका धर्म निरन्तर प्रवृत्त रहे।

यह है जैनधर्मके अनुयायी प्रत्येक जैनकी कामना। **'जियो और जीने दो'**, **'रहो और रहने दो'** जैसे अहिंसक सिद्धान्तोंके प्रवर्त्तक तथा अनुपालक हम जैन अपनेको निश्चय ही भाग्यशाली मान सकते हैं। लेकिन जहाँ अहिंसा दूसरोंके हितोंका घात न करनेको शिक्षा देती है वहाँ वह अपने हितोंकी रक्षाका भी ध्यान दिलाती है। हममें इतना बल, साहस, विवेक और ज्ञान हो, जिससे हम अपने कर्त्तव्योंका बोध कर सकें और अपने अधिकारोंको सुरक्षित रख सकें। इसके लिए मेरे निम्न सुझाव हैं :

१. बालकोंको स्वस्थ और बलिष्ठ बनाया जाये। माता-पिताको इस ओर आरम्भसे ध्यान रखना आवश्यक है। इसके लिए प्रत्येक जगह खेल-कूंद और व्यायामके सामूहिक साधनोंकी व्यवस्था की जाय। आज जैन लोग कमजोर और डरपोक समझे जाते हैं और इससे उनके साथ अन्याय होता रहता है।

२. प्रत्येक बालकको आरम्भसे धार्मिक शिक्षा दी जाये और इसके लिए हर जगह सम्मिलित धर्म-शिक्षाकी व्यवस्था की जाय।

३. बालकोंकी तरह बालिकाओंको भी शुरूसे शिक्षा दी जाय, ताकि समाजका एक अङ्ग शिक्षा-हीन न रहे।

४. प्रतिसप्ताह या प्रतिपक्ष बालकोंकी एक सभाका आयोजन किया जाय, जिसमें उन्हें उनके सामाजिक और धार्मिक कर्त्तव्योंके साथ देशसेवाका बोध कराया जाय।

५. जो बालक-बालिकाएँ तीव्र बुद्धि और होनहार हों, उन्हें ऊँची शिक्षाके लिए बाहर भेजा जाय तथा ऐसे बालकोंकी आर्थिक सहायता की जाय।

६. प्रौढ़ोंमें यदि कोई साक्षर न हों तो उन्हें साक्षर बनाया जाय और आजके प्रकाशमें उन्हें उच्च उद्योगों, व्यवसायों और धंधोंके करनेकी प्रेरणा की जाये।

७. समाजमें कोई भाई गरीबीके अभिशापके पीड़ित हों तो सम्पन्न भाई उन्हें मदद करें और इसे वे परोपकार या साधर्मी-वात्सल्य जैसा ही पुण्य-कार्य समझें।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

८. यदि किसी भाईसे कभी कोई गलती हो गई हो तो उसे सुधारकर उनका स्थितीकरण करें और उन्हें अपना वात्सल्य प्रदान करें।

९. मन्दिरों, तीर्थों, पाठशालाओं और शास्त्रभण्डारोंकी रक्षा, वृद्धि और प्रभावनाका सदा ध्यान रखा जाय।

१०. ग्राम-सेवा, नगर-सेवा, प्रान्त-सेवा और राष्ट्र-सेवा जैसे यशस्वी एवं जनप्रिय लोक-कार्योंमें भी हमें पीछे नहीं रहना चाहिए। पूरे उत्साह और शक्तिसे उनमें भाग लेना चाहिए।

इन दशसूत्री प्रवृत्तियोंसे हम जहाँ अपने वर्तमानको सम्हाल सकेंगे वहाँ अपने भावीको भी श्रेष्ठ बना सकेंगे। जो आज बालक और कुमार हैं वे हमारी इन प्रवृत्तियोंके बलपर गौरवशाली भावी समाजका निर्माण करेंगे।

शिक्षाका महत्त्व : शान्तिनाथ दि० जैन संस्कृत-विद्यालयकी स्थापना

यहाँ शिक्षाके सम्बन्धमें भी कुछ कहना आवश्यक है। आचार्य वादीभसिंहने लिखा है कि '**अनवद्या हि विद्या स्याल्लोकद्वयसुखावहा**'—अर्थात् निर्दोष विद्या निश्चय ही इस लोक और परलोक दोनों ही जगह सुखदायी है। पूज्य वर्णीजीके हम बहुत कृतज्ञ हैं। वे यदि इस प्रान्तमें शिक्षाका प्रचार न करते, जगह-जगह पाठशालाओं और विद्यालयोंकी स्थापना न करते, तो आज जो प्रकाण्ड विद्वान् समाजमें दिखाई दे रहे हैं वे न दिखाई देते। उनसे पूर्व इस प्रान्तमें ही नहीं, सारे भारतमें भी तत्त्वार्थसूत्रका शुद्ध पाठ करनेवाला विद्वान् दुर्लभ था। यह उनका और गुरु गोपालदासजी वरैयाका ही परम उपकार है कि षट्खण्डागम, धवला, जयधवला, समयसार, तत्त्वार्थवार्त्तिक, तत्त्वार्थश्लोकवार्तिक, अष्टसहस्री, न्यायविनिश्चय जैसे महान् गन्थोंके निष्णात विद्वान् आज उपलब्ध हैं। अब तो छात्र जैनधर्मके ज्ञाता होनेके साथ लौकिक विद्याओं (कला, व्यापार, विज्ञान,इञ्जिनियरिंग, टैक्नालॉजी आदि) के भी विशेषज्ञ होने लगे हैं और अपनी उभय-शिक्षाओंके बलपर ऊँचे-ऊँचे पदोंपर कार्य करते हुए देखे जाते हैं। आपके स्थानीय शान्तिनाथ दि० जैन संस्कृत विद्यालयसे शिक्षा प्राप्तकर कई छात्र वाराणसीमें स्याद्वाद महाविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय और वाराणसेय संस्कृत-विश्वविद्यालयमें उच्च शिक्षा पा रहे है। ये पूज्य वर्णीजी द्वारा लगाये इस विद्यालय-रूपी पौधेके ही सुफल हैं। इस विद्यालयका उल्लेख करते पूज्य वर्णीजीने 'मेरी जीवनगाथा' (पृ० ४४२ प्रथम संस्करण) में लिखा है कि '**मैंने यहाँपर क्षेत्रकी उन्नतिके लिए एक छोटे विद्यालयकी आवश्यकता समझी, लोगोंसे कहा, लोगोंने उत्साहके साथ चन्दा देकर श्रीशान्तिनाथ विद्यालय स्थापित कर दिया। पं० प्रेमचन्द्रजी शास्त्री तेंदूखेड़ावाले उसमें अध्यापक हैं, एक छात्रालय भी साथमें है। परन्तु धनकी त्रुटिसे विद्यालय विशेष उन्नति न कर सका।**'

ये शब्द हैं उस महान् सन्तके, जिसने निरन्तर ज्ञानकी ज्योति जलायी और प्रकाश किया। वे ज्ञानके महत्त्वको समझते थे, इसीसे उनके द्वारा संस्थापित स्याद्वाद महाविद्यालय वाराणसी, गणेश संस्कृत महाविद्यालय सागर जैसे दर्जनों शिक्षण-संस्थान चारों ओर ज्ञानका आलोक विकीर्ण कर रहे हैं। वर्णीजीके ये शब्द कि '**धनकी त्रुटिसे विद्यालय विशेष उन्नति नहीं कर सका**'—हम सबके लिये एक गम्भीर चेतावनी है। क्या हम उनके द्वारा लगाये इस पौधेको हरा-भरा नहीं कर सकते और उनकी चिन्ता (धनको त्रुटिको) दूर नहीं कर सकते ? मेरा विश्वास है कि उस निस्पृह सन्तने जिस किसी भी संस्थाको स्थापित किया है, उसे आशीर्वाद दिया है वह संस्था निरन्तर बढ़ी है। उदाहरणार्थ स्याद्वाद महाविद्यालयको लीजिए, इसके लिए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्णीजीको आरम्भमें सिर्फ एक रुपया दानमें मिला था, जिसके ६४ पोस्टकार्ड खरीदकर उन्होंने ६४ जगह पत्र लिखे थे, फिर क्या था, वर्णीजीका आत्मा निर्मल एवं निस्पृह था और वाराणसी जैसे विद्याकेन्द्रमें एक जैन विद्यालयके लिए छटपटा रहा था, फलतः चारों ओरसे दानकी वर्षा हुई। आज इस विद्यालयको ५६ वर्ष हो गये और उसका ध्रौव्यकोष भी कई लाख है। यह एक निरीह सन्तका आशीर्वाद था। शान्तिनाथ दि० जैन विद्यालयको भी उनका आशीर्वाद ही नहीं, उनके करकमलोंसे स्थापित होनेका सौभाग्य प्राप्त है। मेरा विश्वास है कि इस विद्यालयका भी ध्रौव्यकोष आप लोग एक लाख अवश्य कर देंगे। तब वर्णीजीका स्वर्गमें विराजमान आत्मा अपने इस विद्यालयको हरा-भरा जानकर कितना प्रसन्न एवं आह्लादित न होगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org